बाल-चरित-माला संख्या—४

स्वामी दयानन्द 'सरस्वती'

लेखक—

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रकाशक—

छात्रहितकारी पुस्तक-माला,

दारागंज, प्रयाग ।

१९३२.

प्रथम संस्करण २०००] [मूल्य ।)

प्रकाशक,
केदार नाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर,
छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग ।

मुद्रक—
रामस्वरूप गुप्त,
अग्रवाल प्रेस, इलाहाबाद ।

स्वामी दयानन्द

जन्म और बाल्यकाल

श्री स्वामी दयानन्द जी का जन्म संवत १८८१ में मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में हुआ था। उनके पिता जी का नाम कर्षन जी था। कर्षन जी पुराने ढंग के एक सच्चे ब्राह्मण थे। वे लेन देन का काम करते थे। दयानन्द जी उनके सब से बड़े पुत्र थे। उनका पहिला नाम मूल जी था। लोग दयाल जी भी कह कर उनको पुकारा करते थे।

मूल जी के जन्म से उनके माता पिता तथा परिवार वालों को बड़ा आनन्द हुआ। उत्सव के बाजे चारों ओर बजने लगे। सब ओर से बधाइयों की भरमार होने लगी। दरवाज़े पर बन्दूकें दगने लगीं। इस शुभ अवसर पर उनके पिता जी ने दिल खोलकर दान, मान और दक्षिणा से ब्राह्मणों का सत्कार किया।

पाँच वर्ष की आयु में बालक दयानन्द को देव नागरी अक्षरों का बोध कराया गया। दक्षिणी ब्राह्मणों में छोटी उम्र में अच्छे २ श्लोक और मंत्र कंठ कराने की चाल है। उसके अनुसार दयानन्दजी को भी बहुत से श्लोक और मंत्र कंठ करा दिये गये। ८ वर्ष की आयु में उनका जनेऊ संस्कार बड़ी धूम धाम से किया गया।

दयानन्द के पिता शैव थे। इसलिये शैव पंथ के सब संस्कार दयानन्द में डाले जाने लगे। कर्षन जी मन्दिरों में जाकर महादेव की पूजा करते और कभी २ मिट्टी की शिव पिंडी बना कर वे घर में ही पूजन करते थे। वे प्रदोस, शिवरात्रि आदि का व्रत भी रखते थे। दयानन्द जी भी अपने पिता की तरह शिव की पूजा करने लगे और व्रत रहने लगे।

१४ वर्ष की आयु में दयानन्द को यजुर्वेद संहिता कण्ठ हो गई। दूसरे वेदों का भी उन्हें अभ्यास कराया गया। व्याकरण के शब्द रूपावली आदि छोटे २ ग्रंथ भी उन्होंने अपने पिता जी से पढ़ लिये।

शिवरात्रि का व्रत

माघ बदी १४ सम्वत् १८९४ का दिन इतिहास में सदा के लिये अमर रहेगा। उसी दिन दयानन्दजी के हृदय में एक नई रोशनी पैदा हुई थी जिसने सारे देश में धार्मिक सुधारों का प्रकाश फैला दिया था। दूसरे देशों में शिवरात्रि का व्रत फागुन बदी १३ को होता है किन्तु काठियावाड़ में यह व्रत माघ बदी १४ को मनाया जाता है। दयानन्द से उस दिन निराहार व्रत रखने के लिये कहा गया। उस समय उनकी उम्र १४ वर्ष की थी।

दयानन्द को उस दिन समझाया गया कि देखो आज तुम्हें उपवास और रात भर जागरण करना पड़ेगा। मंत्र कह कह कर तुम्हें चावल और फूल महादेव की मूर्ति पर चढ़ाना पड़ेगा। माला की गुरिया गिन गिन कर गायत्री का मंत्र जपना होगा। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारा व्रत रहना निष्फल हो जायगा।

टंकारा ग्राम के बाहर महादेव जी का एक बड़ा मन्दिर था। गांव भर के लोग शिवरात्रि के

दिन सायंकाल जागरण के लिये वहाँ इकट्ठा होते थे। शाम होते ही लोग स्नान करके, रेशमी धोतियां पहिनकर, माथे पर भभूत लगाकर और हाथ में पूजा की सामग्री और माला लेकर शिव मन्दिर में जमा होने लगे। दयानन्द और उनके पिता भी उसी समय वहाँ पहुँचे।

लोग घण्टे को टन टनाने लगे और ऊँचे स्वर से श्लोक पढ़ने लगे। मन्दिर में घी के सैकड़ों दीपक जलने लगे। धूप की सुन्दर महक मन्दिर के चारों ओर फैलने लगी। दोपहर रात तक पूजा बड़े ठाठ बाट से हुई। उस समय का दृश्य बड़ा मनोहर था।

तीसरा पहर शुरू होते ही जोश कम होने लगा। लोगों की आँखें मिचने लगीं और वे निद्रा के वश होकर झूमने लगे। लोग एक एक करके सोने लगे। और यदि सब से पहिले किसो को निद्रा आई तो स्वामी जी के पिता को। पुजारियों ने भी जब देखा कि सब सो रहे हैं तो उन्होंने भी मन्दिर के बाहर जाकर सोना शुरू कर दिया।

उस समय चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। हाथ पसारने पर वह अपने को नहीं सूझ पड़ता था। उस समय केवल दयानन्द अकेले जाग रहे थे। जब उनको निद्रा मालूम होने लगती तो वे अपने नेत्रों में ठंढे पानी के छींटे दे देकर अपने को सचेत कर लेते थे। वास्तव में वही एक सच्चे व्रत रखने वाले अपने को सिद्ध कर रहे थे।

इसी बीच में एक बड़ी अद्भुत घटना देखने में आई। चूहे आ आकर शिव पिण्डी पर कूद कूदकर चढ़ने लगे और उस पर चढ़ाये हुये भक्तों के पदार्थों को आनन्द से खाने लगे। उस समय दयानन्द ने सोचा कि मुझे यह पढ़ाया गया है कि शिव जी त्रिशूल धारी हैं, वे बैल पर चढ़ते और कैलाश पर रहते हैं। डमरू बजाते हैं और क्षण भर में लोगों को वर देकर निहाल कर सकते या उनको नष्ट कर सकते हैं। यह कैसा महादेव है जो एक जगह जमा हुआ बैठा है। चूहे उसको गन्दा कर रहे हैं और वह कुछ नहीं बोलता।

दयानन्द जी थोड़ी देर तक सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने अपने पिता को जगा कर कहा, "पिता

जी जिस महादेव का वर्णन मैंने पुस्तकों में पढ़ा है क्या यह मूर्ति वही महादेव है या महादेव कोई दूसरे देवता हैं।" पिता ने डांटकर कहा, "ऐसे पूजन के समय ऐसी २ व्यर्थ की बातें क्यों करता है ? खबरदार जो तूने ऐसे २ प्रश्न फिर किये तो तुझ पर बड़ी मार पड़ेगी।" परन्तु दयानन्द ने नहीं माना और वे निडर होकर प्रश्न करते ही गये।

पुत्र के बार बार पूछने पर पिता जी कुछ नम्र हुये और फिर उन्होंने प्यार से कहा, "पुत्र, इस कलियुग में श्री महादेव जी के साक्षात दर्शन नहीं होते, इसलिये लोग उनकी मूर्ति मन्दिरों में रखकर उसकी पूजा करते हैं। महादेव जी अपनी मूर्ति की पूजा देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। बेटा, तुम्हारा कहना ठीक है कि यह मूर्ति वास्तव में पत्थर की है, साक्षात देवता नहीं है।" किन्तु दयानन्द को इससे संतोष नहीं हुआ।

उस दिन से उन्होंने सच्चे महादेव का दर्शन करने का व्रत लिया। वे उठे और बोले, "पिताजी, मेरा शरीर भूख से थक रहा है, यहां बैठा नहीं

रहा जाता, इसलिये घर जाने की आज्ञा दीजिये।" पिता ने घर जाने की आज्ञा दे दिया। दयानन्द का व्रत से विश्वास उठ चुका था, उनको भूख लगी हुई थी। घर पहुँचते ही उन्होंने माता से कहा, "माँ, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने को दो।" मां तो कोमल बालक को पहिले ही से व्रत करवाने के पक्ष में नहीं थी। उसने उनको लड्डू, गुलाबजामुन आदि अनेक प्रकार की मिठाइयां खाने को दीं, और उनसे कहा कि बेटा देखना खाने का ज़िक्र अपने पिता से न करना। दयानन्द जी आनन्द से भोजन करके सोने लगे।

सवेरे जब वे सो कर उठे तो उनके पिता उनपर रात में भोजन कर लेने के कारण बड़े क्रोधित हुये। दयानन्द जी ने अपने चचा के द्वारा पिता जी से कहला भेजा कि मैं अब इन जंत्र, मंत्र और व्रत के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता। यह बड़े २ कर्म काण्ड मुझसे नहीं निबह सकते। चचा जी ने उनको समझा दिया। उस समय से दयानन्द जी ने अपना ध्यान पढ़ने की ओर अधिक लगाया।

सन्यासी होने का विचार

दयानन्द जी के दो छोटी बहनें और दो छोटे भाई और थे। वे बड़े प्रेम पूर्वक एक दूसरे से मिलकर रहते थे। एक दिन जब वे अपने एक मित्र के घर में बैठे नाच देख रहे थे तब उसी समय उनको समाचार मिला कि तुम्हारी छोटी बहिन को हैज़ा हो गया है, घर बहुत जल्द चलिये। वे चट घर पहुँचे और देखा कि बहिन की तबीअत अत्यन्त खराब है। वैद्य पर वैद्य दवा करने के लिये बुलाये गये किन्तु किसी दवा से कोई लाभ न हुआ और अंत में उनकी बहिन का देहान्त हो गया।

दयानन्द के माता पिता अपनी पुत्री के मर जाने से फूट फूट कर रोने लगे। एक दयानन्द ही ऐसे थे जिनके आँखों से आँसू नहीं निकले। माता पिता ने उनको बहुत फटकारा कि तुम बड़े निर्दयी हो, तुम्हारी बहिन मर गई है और तुम उसके लिये कुछ शोक नहीं कर रहे हो किन्तु उन्होंने कुछ परवाह न की। वे किसी ऊँचे विचार में ग़ोते लगा रहे थे। वे सोच रहे थे, अरे मेरी बहिन की

तरह सबको एक न एक दिन मरना होगा। इस मौत से अमीर ग़रीब कोई नहीं बच सकेगा। यह दुःख सब को सहना पड़ेगा। यह जीवन सचमुच पानी के बुल्ले की तरह चंचल है। जिस प्रकार दो लकड़ियों के रगड़ने से आग पैदा होती है उसी प्रकार बहिन की मृत्यु से दयानन्द के हृदय में भी एक आग पैदा हो गई जिसने संसार की इच्छाओं की घास को जलाना शुरू कर दिया। उस समय दयानन्द की अवस्था १८ वर्ष की थी।

कुल की रीति के अनुसार ५ दिन तक लगातार लोग आते जाते रहे। घर में रोना बना रहा किन्तु दयानन्द के आंखों में आंसू नहीं आये। वे चुप्पी साधे अपने चिन्ता में मग्न रहते थे। बिछौने पर पड़े २ वे चौंक पड़ते थे। वे यही सोचते थे कि इस मौत की दवा कहां मिलेगी। अन्त में उन्होंने इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि चाहे जिस प्रकार से हो मुक्ति का मार्ग ढूँढूँगा और मृत्यु के मुँह से छुटकारा पाऊँगा।

दूसरे वर्ष जब उनकी आयु १९ वर्ष की थी तो एक घटना और हो गई। संयोग से उनके चचा

को भी हैज़ा हो गया। सैकड़ों दवायें की गईं किन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। मरते हुये चचा ने दयानन्द को अपने पास बुलाया और उन्हें देख कर ज़ोर ज़ोर से रोना शुरू किया। दयानन्द चचा के रोने को न सह सके। वे दिल के पक्के होते हुये भी अधीर हो गये और फूट फूट कर रोने लगे। देखते देखते चचा के प्राण पखेरू उड़ गये।

यह दूसरी घटना थी जिससे दयानन्द का चित संसार से ऊब उठा और वे बड़ी गम्भीरता पूर्वक मुक्ति का मार्ग खोजने लगे। उन्होंने अपने पढ़े लिखे मित्रों से इस बात की चर्चा करना शुरू किया। उन्होंने उनको योगाभ्यास करने की सलाह दी। यह बात दयानन्द में बैठ गई। अपने मन के भेद को खोलकर एक दिन उन्होंने अपने मित्रों से साफ़ साफ़ कह दिया, "मैं इस संसार को साररहित समझता हूँ। मन को लुभाने वाली ये सब वस्तुयें झूठी हैं। अब मैं घर में नहीं रह सकूंगा।" यह ख़बर दयानन्द के माता पिता को भी मालुम हो गई। वे अब उसे उसका विवाह करके गृहस्थी में बांधने की कोशिश करने लगे।

एक दिन स्वामी दयानन्द ने अपने पिताजी से कहा, "पिताजी, मुझे व्याकरण, ज्योतिष, और वैद्यक पढ़ना है। इन विषयों की पढ़ाई काशी में अच्छी होती है। इसलिए मुझे वहां भेज दीजिये।" उन्होंने उत्तर दिया, "बेटा, काशी जाकर क्या करोगे, जितना तुमने पढ़ लिया है उतना काफ़ी है। हमें बहुत पढ़ा करके करना क्या है? अब तुम घर का काम काज सीखो मैं तुम्हारा विवाह किये देता हूँ। मज़े में घर का सुख भोग करो।" दयानन्द ने दो तीन बार काशी जाने के लिये फिर कहा किन्तु फिर भी उन्हें वही उत्तर मिला।

अब तो दयानन्द के लिये घर में एक दिन भी रहना दूभर हो गया। उन्होंने पिता से एक दिन फिर कहा, "यदि आप मुझे काशी नहीं जाने देना चाहते तो यहां से तीन कोस के फासले पर एक पंडित जी रहते हैं, वहां जाकर पढ़ आने की आज्ञा दीजिये।" वे इस पर राज़ी होगये। उस दिन से दयानन्द रोज़ पढ़ने के लिये पंडित जी के पास जाने लगे। एक दिन पंडित जी ने विवाह की चर्चा छेड़ दी। इस पर दयानन्द ने कहा कि मैं विवाह

को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। विवाह मैं कभी भी नहीं करना चाहता। पंडित जी ने दयानन्द के विचार को उनके पिता से कह दिया। उधर दयानन्द घर छोड़ने की चिन्ता में लीन हुये और इधर पिताजी विवाह की तैय्यारी धूम-धाम से करने लगे।

विवाह की तैय्यारी और घर का छोड़ना

पुत्र के बहके हुये मन को देख कर पिताजी ने उनका विवाह करना ही सब से अच्छा समझा। एक सुन्दरी से उनका विवाह भी तय हो गया। विवाह की तैय्यारी बड़े वेग से होने लगी। सम्बन्धियों के यहां पत्र भी रवाना कर दिये गये। दावत करने के लिये नाना प्रकार के पदार्थ एकट्ठा किये जाने लगे। बहू के लिये ज़ेवर भी बनने लगे। तरह तरह की रेशमी साड़ियां मंगवाई गईं। नज़दीकी रिश्तेदारों और नौकरों के कपड़े बनने लगे। गवैय्ये और बाजा बजाने वाले आ आकर सलाम करने लगे।

इस तैय्यारी को देख कर दयानन्द का चित्त

और भी घबड़ाया। वह १९०२ का सम्वत् था। उनकी आयु २२ साल की हो चुकी थी, एक दिन उन्होंने घर छोड़ने का पक्का विचार कर लिया। सायंकाल का समय था। घर में ढोल मजीरे बज रहे थे। दयानन्द जी हमेशा के लिये घर को नमस्कार कर के जंगल की ओर चल पड़े। पहिली रात उन्होंने नगर से ६ कोस के फ़ासले पर बिताई। दूसरे दिन दिन भर चले और सायंकाल एक मन्दिर में ठहरे। राज पथ को छोड़ कर वे ऊबड़ खाबड़ रास्ते से यात्रा कर रहे थे ताकि मार्ग में कोई जान पहिचान वाला न मिले।

इधर घर में जब यह समाचार मालुम हुआ कि दयानन्द कहीं भाग गया है तो सब एका एक घबड़ा गये। पिताजी के शोक का ठिकाना न रहा। माता मछली की तरह तड़पने लगी, विवाह का ठाठ बाट फीका पड़ गया। चारों ओर घुड़सवार पुत्र की खोज में दौड़ाये गये लेकिन दयानन्द का कहीं भी पता न लगा।

घूमते घामते दयानन्द जी सायले नामक ग्राम में पहुँचे जहां उनकी मुलाकात एक ब्रह्मचारी से

हुई। उसने उनको दीक्षा देकर गेरुवा वस्त्र धारण करवाया और हाथ में एक तूम्बा देकर कहा, "देखो आज से तुम्हारा नाम शुद्ध चैतन्य हुआ।" इसके पश्चात् वे वहीं सन्तों की मंडली में रह कर योग साधना करते रहे। किन्तु यहाँ रहने से उनको सन्तोष न हुआ। इसलिये वे कोट काङ्गड़ा नाम के एक छोटे से नगर में चले गये जहां उन्होंने तीन मास बिताये।

यहां से थोड़ी दूर पर सिद्धपुर नाम के स्थान में कार्तिक में बड़ा मेला लगता था। दयानन्द जी ने समझा सम्भव है वहां अच्छे अच्छे सन्यासियों के दर्शन हों, इसलिये उस स्थान के लिये चल पड़े। मार्ग में उनकी भेंट एक ग्रामीण वैरागी से हुई जो उनको और उनके घर वालों को अच्छी तरह जानता था। उसने आश्चर्य से पूछा, अरे तुमने यह गेरुवा वस्त्र कैसे पहिन लिये और हाथ में कमंडल क्यों लिये हो? दयानन्द ने सारी कथा शुरू से अन्त तक उससे कह सुनाई। उसने बड़ा दुख किया और पूछा कि क्या तुमने घर छोड़ दिया और अब वहाँ जाने का क्या तुम्हारा विचार नहीं है?

उन्होंने कहा 'हाँ मैंने घर छोड़ दिया है' और यह कहकर सिद्धपुर गये और वहाँ नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में रहने लगे।

उधर उस ग्रामीण वैरागी ने एक पत्र लिखकर दयानन्द के पिता को सूचित किया कि वे घर से भागकर यहाँ आये हैं और सिद्धपुर के मेले में ठहरेंगे। पत्र पाते ही उनके पिता सिपाहियों को लेकर सिद्धपुर पहुँचे और दयानन्द को ढूँढने लगे! एक दिन एकाएक वे उस मन्दिर में पहुँच गये जहाँ दयानन्द जी गेरुये कपड़े पहिने बैठे हुये थे। वे एक दम क्रोधित हो गये और बोले, "तू बड़ा नालायक लड़का पैदा हुआ है। तूने हमारे कुल में कलंक लगाया है," दयानन्द जी ने उठकर पिता के चरण पकड़ लिये और कहा, "पिताजी, मैं अपने कर्मों का फल अब पा चुका हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। जब आज्ञा हो तब मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ।"

संन्यास ग्रहण

पिता ने उनके कपड़े फाड़ डाले और उन्हें सफेद कपड़े पहिनाकर उनके चारों ओर पहरा बैठा दिया। सिपाहियों को आज्ञा होगई कि वे कहीं जाने न पावें। दयानन्द जी बन्दी तो होगये किन्तु उनकी लव सच्चे मार्ग की खोज में लगी हुई थी। वे अपने पिता के पंजे से निकल भागने की तरकीब सोचने लगे।

पिता जी के बन्धन में पड़े दो दिन और दो रातें व्यतीत होगईं। तीसरा दिन भी खतम हो गया। तीसरी रात आ गई। उसका भी आधा भाग बीत गया और तीसरा पहर शुरू हुआ। पहरेदार ऊँघने लगे उसी समय दयानन्द वहां से निकल भागे। भागते हुये वे आध कोस की दूरी पर एक बाग में पहुँचे। वहाँ एक पुराना मन्दिर था। उसीके शिखर पर पेड़ों की टहनियों में छिप कर वे बैठ गये।

इधर जब सबेरा हुआ और उनके पिता और पहरेदार जगे तो वहाँ बड़ी हलचल मच गई। चारों

ओर आदमी दौड़ाये गये। वे उस मन्दिर में भी पहुँचे जहाँ स्वामी जी छिपे बैठे हुये थे और बहुत ढूँढ़ा मगर उनका पता न लगा। दयानन्द जी ऊपर पत्थर की मूर्ति की तरह साँस खींचकर बैठे हुये थे। न हिलते थे और न डुलते थे। दिन भर वे वहीं बैठे रहे। सायंकाल ७ बजे वे ऊपर से नीचे उतरे और दो कोस की दूरी पर एक गाँव में विश्राम किया।

प्रातःकाल उठकर वे फिर चल पड़े और अनेक गाँवों और नगरों में घूमते हुये बड़ौदा पहुँचे। यहां चैतन्य मठ में बहुत से वेदांती ब्रह्मचारी और सन्यासी रहते थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द को पक्का वेदांती बना दिया। मठ में दयानन्द पर ऐसा रंग चढ़ा कि वे सिवाय आत्मा के सबको झूठा मानने लगे। उन्होंने अपने को 'ब्रह्म' कहना शुरू किया।

बड़ौदा से चल कर वे नर्मदा की ओर गये। वहां वे सच्चिदानन्द नाम के एक परमहंस से मिले। थोड़े समय तक उनसे ज्ञान प्राप्त करके वे चाणोद कर्नाली नामक स्थान में पहुँचे। वहां बड़े २ पंडित

और ब्रह्मचारी रहते थे। वहां पर परमानन्द नाम के एक परमहंस भी थे। उन पर स्वामी जी की बड़ी भक्ति हुई और वे उनसे वेदान्तसार आदि कई ग्रन्थ पढ़ने लगे।

स्वामी जी को भोजन अपने हाथ से बनाना पड़ता था इससे उनकी पढ़ाई में बड़ी अड़चन पड़ती थी। उन्होंने समय को बचाने के लिये और साथ ही अपने स्वरूप को छिपाने के लिये सन्यास लेने का विचार किया। उन्होंने स्वामी चिदाश्रम जी से सन्यास लेने की प्रार्थना की किन्तु उन्हों ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि ब्रह्मचारी अभी नव-जवान है। इसके अनन्तर वे पूर्णानन्द सरस्वती से मिले और उनसे सन्यास ग्रहण किया। सन्यासी होने पर उनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती रक्खा गया।

भ्रमण और गुरु की खोज

सन्यासी होने के अनन्तर स्वामी दयानन्द योगी और महात्माओं की खोज में यहां वहां चक्कर लगाने लगे। वे स्वामी योगानन्द जी से मिले और उनसे

उन्हों ने योग विद्या सीखी। श्रीकृष्ण शास्त्री से उन्होंने व्याकरण पढ़ी और फिर चाणोद कर्नाली में जा कर एक राजगुरु से वेद पढ़ने लगे।

वहां कुछ समय ठहर कर स्वामी जी महात्माओं की तलाश में अहमदाबाद गये। वहां सन्त महात्माओं की संगति में समय बिताने लगे। वहां अनेक योगियों से उनकी मुलाकात हुई। आबू से स्वामी जी हरिद्वार की ओर रवाना हुये। कुछ दिन तक वहां ठहर कर वे हृषीकेश गये। यहां भी अनेक साधू महात्माओं से उनकी भेंट हुई और उनसे उन्होंने योगाभ्यास सीखा।

हृषीकेश से स्वामी जी टेहरी गये और वहां से हिमालय पर्वत के कठिन कठिन जंगली स्थानों में घूमने लगे। यहां उनको बड़े बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा। कहीं २ बर्फ़ के ऊपर और कहीं कांटे दार झाड़ियों में घुस कर उनको चलना पड़ता था। नुकीले पत्थरों के ठोकरों से और कांटों के लगने से उनके पैर लंगड़े हो गये और शरीर पर कई घाव हो गये। ख़ून बहता था, तकलीफ होती थी किन्तु वे उसकी पर्वाह नहीं करते थे। उनका मन तो अच्छे २ महात्माओं के दर्शन में लग रहा था।

स्वामी जी हिमालय पर्वत बड़ी चाव से गये लेकिन उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ। उनको सच्चे सन्यासी बहुत कम मिले। जगह २ उन्होंने पाखंडी सन्यासियों की संख्या अधिक पाई। घूमते हुये उनकी एक महन्त से मुलाकात हुई। वह स्वामी जी के तेज को देखकर उन पर लट्टू हो गया। उसने कहा, "यदि आप हमारे शिष्य हो जाइये तो हम आप को अपनी गद्दी का मालिक बना देंगे। आपके हाथ में लाखों रुपयों की जायदाद हो जायगी। आप महन्त कहलाइयेगा। सैकड़ों आदमी आपकी सेवा में हाजिर रहेंगे। और जन्मभर आप आनन्द से जीवन बितावेंगे।"

स्वामी जी महन्त की बातों को सुनकर हंसने लगे। उन्होंने उत्तर दिया कि भाई, मेरे पिता की जायदाद आपकी जायदाद से कई गुना बड़ी है। जब मैं उसे लात मार कर चला आया हूँ तो आपकी जायदाद को मैं क्या समझता हूँ। आप न स्वयं ठीक रास्ते पर चलते हैं और न दूसरों को चलने देते हैं। चेला बनना तो दूर रहा मैं एक दिन भी आपके साथ नहीं रह सकता। वहां से दूसरे

दिन वे जोशीमठ गये और जोशीमठ से वे बद्री-नारायण पहुँचे ।

वहां के महन्त 'रावल जी' थे स्वामी जी ने उनसे पूछा कि क्या यहां कोई सच्चा योगी भी रहता है ? महन्त जी ने कहा कि इधर बहुत दिनों से कोई योगी नहीं आया । स्वामी जी को यह सुनकर बड़ा शोक हुआ । एक दिन बद्रीनारायण से चल पड़े और अलकनन्दा नदी के किनारे जा पहुँचे । कष्टों को झेलते हुये जब वे उसके मुख के समीप आये तो वहां चारों ओर सिवाय पहाड़ों के और कुछ न देखा । वहां खाने पीने की कोई वस्तु नहीं थी । उनके पास कपड़े भी ओढ़ने को नहीं थे । सरदी भयानक पड़ रही थी । कई दिन तक तो उन्हें उपवास करना पड़ा और कई दिन तक वे बर्फ खाकर रहे । इसके बाद जब कोई योगी वहां न मिला तो वे नदी को पार कर नीचे रामपुर चले आये और वहाँ से वे घूमते घामते मुरादाबाद पहुँचे ।

मुरादाबाद से वे सम्भल गये और फिर वहीं सच्चे गुरू की तलाश में नर्मदा के जंगलों में

विचरने लगे। एक बार वे जंगल के एक हिस्से में पहुँचे जहाँ पैरों के चिन्ह भी नहीं दिखलाई देते थे। वहाँ बैर के बहुत से वृक्ष थे और चारों ओर लम्बी और घनी घास उगी हुई थी। वहाँ से स्वामी जी का बाहर निकलना कठिन होगया। इतने में एक काला रीछ बड़े वेग से दौड़ता चला आता सामने दिखाई पड़ा। वह मुँह फैलाकर स्वामी जी पर लपका। स्वामी जी ने अपना सोंटा रीछ की ओर बढ़ाया और वह उसे देखकर भाग गया। स्वामी जी आगे बढ़े और तीन वर्ष इन जंगलों में घूमते हुये और अनेक महात्माओं का सत्संग करते हुये स्वामी विरजानन्द का नाम सुनकर वे मथुरा पहुँचे।

स्वामी विरजानन्द जी के दर्शन

स्वामी विरजानन्द जी पंजाब प्रान्त के कर्तारपुर के पास किसी ग्राम के रहने वाले थे। वे भारद्वाज गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण थे। पाँच वर्ष की आयु में उनके माता पिता का देहान्त होगया। उनकी रक्षा करने वाला अब कोई न रहा। उनके बड़े

भाई ने उनको दुख देना शुरू किया इसलिये वे घर छोड़कर हृषीकेश चले गये। वहाँ वे गंगाजल में बैठकर गायत्री जप करने लगे।

एक दिन स्वप्न में उनसे किसी ने कहा, "विरजानन्द, तुम यहाँ से चले जाओ, जो कुछ तुम्हारा होना था सो होगया।" यह सुनकर वे कनखल गये और वहाँ पूर्णानन्द स्वामी से व्याकरण पढ़ते रहे। कनखल से वे प्रयाग गये और वहाँ से अनेक तीर्थों में घूमते रहे। एक दिन सोरों में अलवर के राजा विनयसिंह जी से उनकी भेंट हुई। उनके प्रार्थना करने पर वे अलवर इस शर्त पर जाने के लिये तैयार हुये कि राजा उनसे पढ़ा करें। महाराज ने विरजानन्द जी को अलवर ले जाकर एक अच्छे घर में ठहराया और खाने के अलावा जेब खर्च के लिये २) रोज़ और बाँध दिया। वे रोज़ विरजानन्द जी से तीन घंटे पढ़ने लगे। एक दिन जब स्वामी जी महाराज के महल में नियत समय पर पढ़ाने के लिये गये तो उस समय वे नाच रंग में फंसे रहने के कारण नहीं हाज़िर हो सके। विरजानन्द जी को राजा के इस व्यसन से बड़ा क्रोध आया और वे अलवर छोड़कर सोरों चले आये।

वहाँ थोड़े दिन रहकर वे भरतपुर गये और कुछ समय वहाँ बिताकर वे सोरों फिर वापस आये। सोरों से वे मथुरा गये और वहीं हमेशा रहने का उन्होंने पक्का विचार किया। कहते हैं घर छोड़ने पर ही विरजानन्द जी ने परम हंस की वृत्ति धारण की थी।

स्वामी विरजानन्द जी एक छोटे से मकान में रहने लगे और वहीं पर उन्होंने एक संस्कृत की पाठशाला भी खोल रक्खी थी जिसमें विद्यार्थी आकर उनसे संस्कृत पढ़ते थे। वे प्रातःकाल ४ बजे उठते और स्नान करके प्राणायाम करने लगते थे। सूर्योदय के बाद वे पाठशाले में दोपहर तक पढ़ाते और थोड़ा विश्राम लेकर तीसरे पहर तक फिर पढ़ाते थे। सायंकाल स्नान करके फिर प्राणायाम करते और रात में ईश्वर का गुणानुवाद गाते या विद्यार्थियों से वेदों पर बातचीत करते थे। वे सोते बहुत कम थे और प्रायः केवल दूध ही पीते थे। खर्च का प्रबन्ध महाराज अलवर और महाराज जैपुर ने कर दिया था।

उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। वे विषय की तह में पहुँच जाते थे। एक बार जिस श्लोक

को सुन लेते वह उनको हमेशा के लिये याद हो जाता था। सुन सुन कर उन्हें बहुत से ग्रन्थ ज़बानी याद हो गये थे। काशी के बड़े २ पंडित भी उनके खोपड़े को मानते थे। जब शास्त्र की कोई बात उनसे पूछी जाती तो वे उसका ऐसा अच्छा उत्तर देते थे कि लोग वाह वाह करने लगते थे। वे सच्चे स्पष्टवक्ता और सीधे साधे दण्डी सन्यासी थे।

उनकी कीर्ति को सुनकर स्वामी दयानन्द सम्वत १०१७ में उनके दर्शन के लिये मथुरा आये। अटारी पर चढ़कर उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया। विरजा नन्द ने पूछा "कौन है?" उत्तर मिला, "दयानन्द सरस्वती।" विरजानन्द ने पूछा, "तुमने व्याकरण भी कुछ पढ़ा है।" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "हां, सारस्वत आदि ग्रन्थ पढ़ा है।" दण्डी जी ने दरवाज़ा खोल दिया। दयानन्द जी ने उन्हें सादर नमस्कार किया और फिर वे उनके पास बैठ गये।

अध्ययन और विदाई

विरजानन्द ने पूछा, "कहो कहाँ चले।" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "आपका नाम सुनकर आपके पास आया हूँ। आपसे विद्या पढ़ना चाहता हूँ।" दण्डी जी ने कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर स्वामी जी ने बड़ी बुद्धिमानी से दिया। वे थोड़ी देर की बातचीत से ही समझ गये कि दयानन्द एक होनहार विद्यार्थी है। उन्होंने कहा, "दयानन्द, मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा तो जरूर लेकिन तुम्हें शुरू से पढ़ना पड़ेगा। अभी तक जो तुमने पढ़ा है वह न पढ़ने के बराबर है। तुमको ग्रन्थों का सच्चा अर्थ नहीं बतलाया गया और न तुमने ग्रन्थों के मर्म को ही समझा है। एकबात तुम्हें और करनी पड़ेगी और वह यह कि तुम अपने खाने पीने का भी प्रबन्ध कर लेना"। स्वामी जी ने दोनों बातों को मान लिया।

ईश्वर की कृपा से उनके खाने पीने आदि का प्रबन्ध भी मथुरा के कुछ सज्जनों की उदारता से बड़ी सरलता पूर्वक हो गया। श्री लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर के नीचे की कोठरी में वे रहने लगे।

वे प्रातः काल उठकर शौच और स्नान के अनन्तर सन्ध्या करने और इसके पश्चात् व्यायाम करके दण्डी जी के पास विद्याध्ययन करने के लिये ठीक समय पर पहुँच जाते थे।

स्वामी जी विरजानन्द जी की सेवा भी खूब करते थे। विरजानन्द जी यमुना जल से स्नान करते और यमुना जल पीते भी थे। इसलिये दोनों समय स्वामी दयानन्द जी यमुना से कई घड़े साफ़ जल अपने कन्धे पर रखकर दण्डी जी के पास ले आते थे। पानी लाने के समय कभी २ बड़ी जोर की आँधी भी आती थी, पानी भी मूसलाधार बरसता था किन्तु वे अपने नियत काम को करते अवश्य थे। एक दिन भी उन्होंने नागा नहीं किया। वे कभी २ उनके पैर भी दबाया करते थे। विरजानन्द जी उनको सब चेलों से अधिक चाहने लगे और बड़े प्रेम से उन्हें पढ़ाने लगे।

स्वामी दयानन्द की बुद्धि बड़ी तेज़ थी। दो एकबार पढ़ने से उनको पाठ याद हो जाता था। एक बार की बात है कि अष्टाध्यायी की कोई बात वे भूल गये। उन्होंने गुरू जी से पूछा। गुरू जी ने

झिड़क कर कहा, "जाओ स्मरण करके आओ, यहाँ हम बराबर उसी पाठ को पढ़ाने के लिये नहीं बैठे हैं।" दो तीन दिन स्वामी जी ने कोशिश की किन्तु वह उन्हें स्मरण न आई। उन्होंने गुरू जी से कई बार पूछा किन्तु उन्होंने भी नहीं बतलाया।

स्वामी जी जोश में आकर यमुना के किनारे जा बैठे और यह प्रण करके उस बात को स्मरण करने लगे कि या तो उसे स्मरण ही करके छोड़ूगा या यमुना में कूद पड़ूंगा और अपने शरीर को मगर मच्छ का भोजन बना दूँगा। वे ध्यान में इतने मग्न हुये कि उन्हें चारों ओर किसी बात का पता न रहा। थोड़ी देर में उन्हें वह बात स्मरण हो गई और उन्होंने जाकर उसे दण्डी जी को सुना दिया। धन्य है जो किसी बात की कठिन प्रतिज्ञा करते हैं उनको सफलता जरूर मिलती है।

उस समय स्वामी जी की आयु ३७ वर्ष की थी। पूर्ण ब्रह्मचर्य से उनका चेहरा चमक रहा था। जब वे पानी भरने को यमुना जी जाते थे तो सैकड़ों जवान स्त्रियां उनको रास्ते में रोज़ मिलती

थीं परन्तु उन्होंने कभी किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर देखा भी नहीं। उनके सदाचार की चारों ओर शोहरत होने लगी। पाठशालाओं में, बाजारों में, अखाड़ों में और भंगपीने वालों की मंडलियों में सब जगह उनका जिक्र होने लगा और सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

जहाँ तक हो सकता था स्वामी जी स्त्रियों को नहीं छूते थे। एक दिन वे यमुना के बालू पर ध्यान में मग्न बैठे थे। उधर से एक स्त्री आ रही थी। उसने स्वामी जी को देख उनके चरणों पर अपना सर रख नमस्कार किया। भीगे हुये वस्त्रों का अनुभव करके ज्योंही स्वामी जी ने आंखें खोली त्योंही अपने सामने उन्होंने एक स्त्री देखा। वे उसे देखकर चौंक पड़े और उस दिन से ध्यान लगाने के लिये उन्होंने दूसरा स्थान चुना। इसका प्रायश्चित्त उन्होंने गोवर्द्धन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात निराहार रह कर किया।

पठन पाठन में विरजानन्द जी कभी स्वामी जी से क्रुद्ध भी हो जाते थे किन्तु वे उसका कुछ भी नहीं ख्याल करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामी

दयानन्द जी को एक लट्ठी से पीटा जिससे उनके भुजा पर बड़ी कड़ी चोट आई। इस पर स्वामी जी ने बड़े नम्र भाव से कहा, "महाराज, मेरा शरीर बड़ा कड़ा है और आपके हाथ बड़े कोमल हैं। मारने से आपको कष्ट होता होगा इसलिये आप मुझे मारा न कीजिये।" धन्य है ऐसा शिष्य! वह घाव जीवन भर रहा। जब उसे स्वामी जी देखते थे तब वे बड़ी भक्ति से अपने गुरू का स्मरण करते थे।

स्वामी विरजानन्द जी अपने शिष्यों में से सब से अधिक स्वामी दयानन्द जी को चाहते थे। उन पर उनकी विशेष कृपा रहती थी। उन्होंने कई बार अपने शिष्यों से कहा भी था कि मेरे शिष्यों में योग्य तो दयानन्द ही है। वे उनकी तर्क शैली पर भी मोहित थे। जब किसी शास्त्रार्थ में विरजानन्द जी जाते तो अपने साथ वे स्वामी दयानन्द जी को अवश्य ले जाते थे और वे कभी २ विरजानन्द जी की ओर से शास्त्रार्थ करते थे। उनकी दलीलों को सुनकर बैठे हुये सज्जन वाह वाह करने लगते थे।

इस प्रकार महात्मा विरजानन्द जी की सेवा में रहकर स्वामी दयानन्द जी ने २॥ वर्ष तक अध्ययन किया। अपने आपको विद्या से भरपूर कर लेने के अन्तर उनकी इच्छा देशाटन करने की हुई। गुरु से विदाई लेते समय शिष्य को उनके सामने कुछ भेंट रखना होता है। स्वामी दयानन्द के पास रुपये तो थे नहीं, वे अपने साथ कुछ लौंग लेते गये और उन्हें गुरुजी के सामने रखकर बोले, "महाराज, आपने मुझे विद्या का दान देकर मुझ पर बड़ी कृपा की है। यदि आपकी आज्ञा हो तो विदाई लेकर अब मैं देशाटन करूँ।"

विरजानन्द जी का जी भर आया। अपने चरणों पर रक्खे हुये शिष्य के सर को उठाकर उन्होंने कहा, "बेटा मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी विद्या सफल हो। किन्तु गुरु दक्षिणा में मैं इन लौंगों को लेना पसन्द नहीं करता। मैं एक दूसरी वस्तु चाहता हूँ और वह वस्तु तुम्हारे पास है।" दयानन्द जी ने कहा, "महाराज, यह शरीर अब आपका है। यदि वह वस्तु मेरे पास है तो आज्ञा कीजिये, आपके सामने रक्खी जाय।"

विरजानन्द जी ने कहा, "बेटा भारत निवासी बड़ा दुःख पा रहे हैं। जाओ और उनका उद्धार करो। नाना प्रकार के मत मतांतरों के कारण जो कुरीतियां फैली हैं उनको दूर करो। गुरुकुल खोलवाकर वेदों के पठन पाठन का प्रबन्ध करो। अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाओ। बस मुझे यही गुरु दक्षिणा चाहिये। संसार की और कोई भी वस्तु मुझे न चाहिये।"

गुरुदेव के वचनों को सुनकर स्वामी दयानन्द बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, मैं आपके एक एक शब्द का पालन करूँगा। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।" विरजानन्द जी ने एक बार शिष्य के सर पर फिर हाथ रखकर कहा, "बेटा, ईश्वर आपकी सहायता करे। आपके सब काम सफल हों।"

चलते समय विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द जी से अन्तिम बात यह कही थी, "दयानन्द, याद रखना, मनुष्य के बनाये हुये ग्रन्थों में ईश्वर और ऋषि मुनियों की निन्दा भरी है परन्तु ऋषियों के बनाये हुये ग्रन्थों में यह बात नहीं है। मनुष्य और

ऋषियों के बनाये हुये ग्रन्थों में यही अन्तर है। इस बात को न भूलना।"

भ्रमण

गुरु से बिदाई लेकर महाराज आगरा पहुँचे और वहां एक बाग़ में ठहरे। अभी तक तो स्वयं अध्ययन करते थे किन्तु अब वे दूसरों को पढ़ाने और उपदेश देने लगे। वेदों और शास्त्रों की पुरानी परिपाटी को छोड़कर वे नये नये सच्चे अर्थ बतलाने लगे जिन्हें सुनकर लोगों को बड़ा सन्तोष होता था। वे व्याख्यान भी देने लगे जिसे सुनने के लिये पंडित सुन्दरलाल ऐसे बड़े बड़े विद्वान आया करते थे। उन्होंने आगरे में रहकर बहुत से सज्जनों को योग विद्या भी सिखलाई थी। एक बार वहीं स्वामी जी को बहुत सी फुंसियां निकल आईं। स्वामी जी ने अंतड़ियों में जल भर कर न्योली कर्म से नाभिचक्र को घुमाकर जल बाहर निकाल दिया। दो रोज़ में उनकी फुंसियां अच्छी होगईं। लोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा।

आगरे से धौलपुर होते हुये स्वामी जी ग्वालियर

पहुँचे। ग्वालियर में कुछ सप्ताह रहकर वे करौली गये और यहां कई मास रहकर वे जयपुर गये। उस समय जयपुर में वैष्णव और शैव का झगड़ा चल रहा था। उसमें स्वामी दयानन्द ने शैवों का पक्ष लिया। वहां से कृष्णगढ़ होते हुये वे अजमेर पहुँचे। वहां से वे पुष्कर जी गये और पुष्कर जी से वे फिर अजमेर सम्वत् १९२३ में वापस आये।

अजमेर में स्वामी जी से तीन दिन तक शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में दयानन्द जी की विजय हुई। कहते हैं किसी बात से चिढ़कर पादरी शूल ब्रेड ने स्वामी जी से कहा कि ऐसी ऐसी बातों से कभी आपको जेल जाना पड़ेगा। स्वामी जी ने हँसते हुये उत्तर दिया, "सत्य के लिये मैं जेल से नहीं डरता। मेरे विरोधी यदि मुझे कष्ट दिलाने का यत्न करेंगे तो मैं उसे सह लूंगा और उनके साथ बुराई कभी न करूँगा। पादरी जी, मैं लोगों के डराने से सत्य को नहीं छोड़ सकता। ईसा को भी तो लोगों ने फाँसी पर लटका दिया था।"

अजमेर में स्वामी जी की योग्यता की बड़ी धूम मच गई। वहां के कमिश्नर मेजर ए. डी. डेविडसन

महाशय भी उनसे मिलने के लिये गये थे। स्वामी जी ने उनसे कहा था, "राजा प्रजा के लिये पिता तुल्य है। यदि कोई पुत्र विपरीत मार्ग पर चले तो पिता का कर्तव्य है कि उसे वह अच्छे रास्ते पर लावे। आप हमारे राजा हैं। देश में अन्धकार फैला हुआ है। आपके राज्य में मत मतान्तरों के लोग भोली भाली प्रजा को नोच खसोट रहे हैं। आप उनकी रक्षा का प्रबन्ध कीजिये।" कमिश्नर साहब ने उत्तर दिया, "यह धर्म का विषय है और धर्म के विषय में हम लोग हाथ नहीं डालते।"

इसके पश्चात् गवर्नर जनरल के एजेण्ट महाशय कर्नलब्रुक से भी उनकी मुलाकात हुई। कहते हैं कि एजेण्ट महोदय गेरुये वस्त्र वालों से बहुत चिढ़ते थे। एक दिन वे लाला वंशीलाल के बाग में गये। वहाँ स्वामी जी एक कुरसी पर बैठे थे। लोगों ने कर्नलब्रुक को आते देख उनसे कुरसी हटा लेने को कहा। स्वामी जी ने लोगों से कहा कि आप घबड़ाइये नहीं और कुरसी नहीं हटाई। जब वे पास पहुँचे तो स्वामी जी उठकर टहलने लगे। कर्नल महाशय ने टोपी उतार स्वामी जी से हाथ

मिलाया और फिर दोनों कुर्सी पर बैठकर बातचीत करने लगे।

स्वामी जी ने बड़ी युक्ति से उन से गोवध बन्द कराने की प्रार्थना की। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं मानता हूँ कि गोवध से बड़ी हानियां हैं किन्तु गोवध बन्द कराना मेरे अधिकार में नहीं है। मैं आपको पत्र देता हूँ, आप लाट साहब से मिलें। जब आप उनको मेरा पत्र दिखलायेंगे तो वे आप से बड़े सन्मान के साथ मिलेंगे। स्वामी जीने पत्र ले लिया और फिर अपने स्थान पर वापस आये।

अजमेर से कृष्णगढ़ होते हुये स्वामी जी मथुरा गये और अपने गुरू विरजानन्द जी से मिले। एक सुवर्णमुद्रा और एक मलमल का थान भेंट किया। विरजानन्द जी अपने शिष्य से मिल कर बड़े प्रसन्न हुये। वे सिर पर हाथ फेर फेर कर उनको अनेक आशीर्वाद देने लगे। उनको यह जानकर बड़ा संतोष हुआ कि दयानन्द जी मेरी आज्ञा के अनुसार देश में सच्चे धर्म का प्रचार कर रहे हैं। गुरू और शिष्य की यह अंतिम भेंट थी।

स्वामी जी मथुरा से मेरठ गये और वहाँ से अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुये कुम्भ मेले में प्रचार करने के लिये हरिद्वार पहुँचे ।

हरिद्वार का कुम्भ मेला और प्रचार का कार्य्य

हरिद्वार का कुम्भ मेला एक बड़ा अद्भुत मेला होता है । साधु, सन्त, तपस्वी, गृहस्थ; लाखों की तादाद में दूर दूर से यहां आते हैं । सन्यासियों तथा गुसाइयों के मठ, उदासियों और निर्मलों के अखाड़े, साधु सन्तों से भर जाते हैं । अन्य अन्य पंथ के लोग भी टोलियां बनाकर यहां आकर रहते हैं । बड़े बड़े राजे और महाराजाओं की भी सवारियाँ निकलती है । उस समय वहाँ की छटा बड़ी निराली हो जाती है ।

इस बड़े समुदाय में स्वामी दयानन्द ने प्रचार करने का अच्छा अवसर देखा इसलिये वे फाल्गुन सुदी ७ सं० १०२३ को हरिद्वार पधारे । वहाँ भीमगोड़े के ऊपर पाँच छः शिष्यों के साथ डेरा जमाया, उन्होंने वहाँ एक स्थान पर "पाखण्ड खण्डिनी" नाम की पताका गाड़कर सत्य का प्रचार

करना शुरू किया। उन्होंने पौराणिक धर्म का खण्डन करके सच्चे वैदिक धर्म का मण्डन करना प्रारम्भ किया।

उनके झंडे को देखकर हज़ारों की तादाद में लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिये आने लगे। बहुतेरे अपने पुराने विचार छोड़ कर उनके कथन को मानने लगे। कट्टर हिन्दू उनके पास जाने का साहस भी नहीं करते थे। वे अपने मित्रों को वहाँ जाने से रोकते थे। वे दयानन्द जी को विधर्मी कह कर उनकी बुराई करते थे किन्तु स्वामी जी इसकी परवाह नहीं करते थे। उस सारे मेले में जहाँ सुनो स्वामी दयानन्द के प्रचार की चर्चा फैल रही थी और बहुत से लोग उनकी प्रशंसा करते थे।

हरिद्वार के महामेले पर स्वामी जी ने बहुत से व्याख्यान दिये। सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सामाजिक कुरीतियों के दूर करने के लिये सैकड़ों पुस्तकें बाँटीं। उन्होंने सन्यासियों के बीच भी व्याख्यान दिये। वे समझते थे कि ये साधुसन्यासी घर बार त्यागी हैं, भिक्षा मात्र से अपना काम

चलाने के कारण स्वार्थ के कीचड़ से परे हैं। यदि ये जग जाँय, सत्य के सहायक बनजाँय तो आर्य्य सन्तान के दुख दरिद्र के दिन शीघ्र ही दूर हो सकते हैं। किन्तु उस मेले में एक भी सन्यासी सत्य का सहायक न मिला। वे विलासी बनकर अपना जीवन बिता रहे थे, उस जीवन को छोड़ना भला उन्हें कब पसन्द था।

मेले के बाद स्वामी जी में सहसा एक परिवर्तन हुआ। उन्होंने सब पुस्तकें त्याग दिया और तनपर राख लगाकर एक कोपीन मात्र पहिनकर मौन धारण कर लिया। व्याख्यान और शास्त्रार्थ आदि सब छोड़कर वे एक कुटी में रहने लगे। इस प्रकार कुछ समय तक एकान्त सेवन और मौन रहकर वे प्रचार के कार्य्य में फिर लगे।

कन्नौज, फरुखाबाद, कानपुर आदि अनेकों स्थान में घूमघूम कर स्वामी जी ने वैदिक धर्म का प्रचार किया और पुराणों और मूर्ति पूजा का खण्डन किया। वे श्राद्ध कर्म को भी नहीं मानते थे और न अवतारों पर विश्वास करते थे। सब जगह लोगों ने बड़े ध्यान से उनके व्याख्यानों को सुना

और बहुत से उनके शिष्य बन गये। वे निम्न-लिखित आठ बातों का खण्डनकरते थे (१) अठारह पुराण (२) मूर्ति पूजा (३) शैव, शाक्त और रामानुज वैष्णव सम्प्रदाय (४) तंत्रग्रन्थ, वाम मार्ग आदि (५) मदिरा, भांग इत्यादि मादक वस्तुयें (६) व्यभिचार (७) चोरी करना (८) छल, कपट, अभिमान, झूठ आदि।

काशी का शास्त्रार्थ

अनेक स्थानों में विचरण करते और वैदिक धर्म की पताका फहराते हुये सं० १०२६ को श्रीस्वामी जी रामनगर पहुँचे। महाराज ईश्वरी नारायणसिंह को पता लग गया कि एक तेजस्वी सन्यासी यहाँ ठहरा हुआ है और मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध बतलाता है। उन्होंने स्वामी जी के खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया। वहाँ कुछ समय तक ठहर कर स्वामी जी काशी चले गये।

भारतवर्ष में काशी नगरी संस्कृत विद्या के लिये बहुत पुराने समय से प्रसिद्ध होती चली आ रही है। वेद, दर्शन, व्याकरण आदि ग्रन्थों की

शिक्षा जैसी यहाँ मिलती थी वैसी शायद दूसरी जगह न मिलती रही होगी। अब भी हिन्दुस्तान के हरेक भाग से हज़ारों विद्यार्थी यहाँ आकर संस्कृत पढ़ते हैं। सैकड़ों संस्कृत की पाठशालायें अब भी मौजूद हैं जहाँ विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा निःशुल्क (मुफ़्त) दी जाती है।

कार्तिक वदी २ सं० १९२६ को श्री स्वामी जी काशी में पधारे। उनके आने का समाचार बिजली की तरह शहर भर में फैल गया। वे राजा माधोसिंह जी के बाग में ठहरे हुये थे। संस्कृत के विद्वान उनके पास आने जाने लगे और अनेक विषयों पर स्वामी जी से वार्तालाप करने लगे। बहुत से लोग उन्हें चिढ़ाने का भी प्रयत्न करते थे किन्तु वे बड़ी गम्भीरता से उनको उत्तर देते थे। स्वामी जी के पास एक मन्दिर था। मन्दिर के जाने वाले भी उनका व्याख्यान सुनते थे। एक दिन पुजारियों ने स्वामी जी से कहा, "महाराज दर्शन करने वालों की संख्या दिनों दिन घट रही है। हमारी जीविका आपके व्याख्यानों से मारी जायगी। आप कृपा करके दूसरे स्थान को

चले जाइये।" स्वामी जी उनके इस कथन पर हँसने लगे।

स्वामी दयानन्द जी ने काशी नरेश को कहला भेजा कि आप हमारा मूर्ति पूजा आदि विषयों पर काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ कराइये। महाराज ने काशी के पंडितों को बुलाया और स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को कहा। उन्होंने १५ दिन का समय मांगा। इसी बीच में वे मयाहमे की सामग्री इकट्ठी करने और अपने शिष्यों को भेजकर स्वामी जी के विद्या की थाह लेने लगे। कहते हैं कि एक दिन काशी के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित राजाराम शास्त्री भी गेरुये वस्त्र पहिनकर स्वामी जी की परीक्षा लेने गये थे।

कार्तिक सुदी १२ सम्वत् १९२६ शास्त्रार्थ की तिथि नियत कर दी गई। महाराजा ईश्वरी नारायण-सिंह ने दान दक्षिणा का भार अपने ऊपर लिया। कलक्टर साहब को भी इसकी सूचना दे दी गई। स्वामी दयानन्द के साथ काशी के सारे पंडितों का शास्त्रार्थ होगा, इस समाचार की धूम सारे नगर में फैल गई। गली कूचे, बाजार, कचहरी सर्वत्र इसी विषय की चर्चा सुनाई पड़ती थी।

नियत तिथि आ पहुँची और शहर के बड़े २ पंडित अपना पोथी पत्रा लेकर शास्त्रार्थ करने के लिये नाना प्रकार की सवारियों पर चढ़ कर आनन्द उद्यान की ओर रवाना हुये। इस जमघट को देखकर बल्देव नाम के एक स्वामी जी के भक्त ने स्वामी जी से कहा, "महाराज आज आपके स्थान पर हज़ारों पंडितों का जमाव हो रहा है। हुल्लड़-बाजी काफ़ी मचेगी। आप अकेले हैं। यदि फरुखाबाद होता तो बीस पचीस आपके सेवक आ जाते। आज उपद्रव होगा।" स्वामी जी ने हँसकर उत्तर दिया, "बल्देव, घबड़ाओ नहीं, सत्य का सूर्य्य अकेले ही सारे तारों की चमक को फीका कर देगा। जो लोक हित के लिये उपदेश करता है उसे भय कहाँ।"

बात की बात में पंडितों का जमघट आ पहुँचा। उनके अगुआ थे प्रसिद्ध महारथी स्वामी विशुद्धानन्दजी, बालशास्त्री, माधवाचार्य्य आदि २८ धुरन्धर विद्वान्। उधर से स्वामी दयानन्द के सहायक थे पंडित ज्योतिः स्वरूप और पं० जवाहर दास। महाराज काशी नरेश भी सभा में उपस्थित थे।

शास्त्रार्थ शुरू हुआ। सबसे पहिले पं० ताराचरण जी स्वामी जी के सामने आये। इसके पश्चात् विशुद्धानन्द जी खड़े हुये। उनके बाद बाल शास्त्री आदि विद्वानों ने भी भाग लिया। दोनों ओर से प्रश्नोत्तर होते रहे। अन्त में श्रीमाधवाचार्य्य ने वेद के दो पत्र स्वामी जी के सामने रखकर कहा, "इसमें लिखा हुआ है कि यजमान यज्ञ के पूर्ण होने पर दसवें दिन पुराण का पाठ सुने। अब आप बतलाइये कि यहां पुराण किसका विशेषण है।" स्वामी जी ने पन्ने विशुद्धानन्द जी को वापस कर दिये और कहा आपही पढ़कर सुनाइये। विशुद्धानन्द ने कहा कि मैं बिना चश्मे के नहीं पढ़ सकता। स्वामी जी ने पन्ने ले लिये किंतु उस समय अन्धेरा था इसलिये उन्होंने दीपक मंगवाया। उन पत्रों पर वास्तव में वेद का कोई नाम न था। पांच सेकण्ड भी दीपक की प्रतीक्षा न की गई कि इस बीच में विशुद्धानन्द जी उठ खड़े हुये। उनके साथ महाराज काशी नरेश और सब पंडित भी उठ खड़े हुये। सब हल्ला करने लगे कि दयानन्द हार गया, सब लोग तालियां बजाने लगे। सब पंडित जयजयकार करते अपने अपने घर चले गये।

इस प्रकार हुल्लड़बाजी के साथ शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। वास्तव में जीत स्वामी दयानन्द की हुई। उस समय के समाचार पत्रों ने साफ़ साफ़ लिखा है कि दयानन्द जी के साथ काशी के पंडितों ने बड़ा असभ्य व्यवहार किया। वास्तव में विजय स्वामी दयानन्द की हुई। हिन्दू पेट्रियट के पौष सुदी १५ स० १९२६ के अंक में काशी शास्त्रार्थ के विषय में यह प्रकाशित हुआ था, "कुछ काल हुआ रामनगर के महाराजा ने एक सभा बुलाई। इसमें काशी के बड़े बड़े पंडित बुलाये गये थे। वहाँ स्वामी दयानन्द और पंडितों के बीच एक लम्बा विवाद होता रहा। पंडित लोग अपने शास्त्र ज्ञान का अत्यन्त गर्व करते थे किंतु हुई उनकी बड़ी भारी हार।"

आर्य्य समाज की स्थापना

काशी में अपनी विजय पताका फहराकर स्वामी जी फरुखाबाद, मिरजापुर, प्रयाग, कलकत्ता आदि स्थानों में घूमते रहे और वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। वे सम्वत् १९३१ ई० में बम्बई पहुँचे

और वहां अपने भक्तों की सभा करके इस बात की जरूरत दिखलाई कि भारतवर्ष में सच्चे वैदिक धर्म के प्रचार करने के लिये आर्य्य समाजों की स्थापना होनी चाहिये। इस विषय पर खूब चर्चा होती रही अन्त में चैत्र सुदी ७ सम्वत १९३२ शनिवार को बम्बई नगर के गिरगांव महल्ले में आर्य्यसमाज की पहिले पहिल स्थापना हुई। उसमें पहिले २८ नियम और उपनियम रक्खे गये किंतु पीछे से केवल मुख्य १० नियम रह गये जो आर्य्य समाज के सिद्धान्त माने जाते हैं। वे दश नियम ये हैं:—

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करना चाहिये।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश नामक एक पुस्तक की भी रचना की है जिसमें वैदिक धर्म के तत्व और दूसरे धर्मों की कमजोरियां प्रश्न और उत्तरों में बड़ी खूबी के साथ दिखलाई गई हैं। आर्य्य समाजी भाइयों को इसे एक प्रकार से धर्म ग्रन्थ समझना चाहिये।

पूना में व्याख्यान

श्रीयुत् महादेव गोविन्द रानडे पूना में जज थे। उन्होंने स्वामी जी को पूने में प्रचार करने के लिये निमंत्रित किया। आषाढ़ वदी १३ सं० १९३२ को वे पूना गये। वहां उनके १५ व्याख्यान हुये। श्रीमान् रानडे उनके व्याख्यानों को सुनने के लिये रोज़ आया करते थे। इन व्याख्यानों का असर महाराष्ट्रों में अच्छा पड़ा और वे स्वामी जी के शिष्य बनने लगे।

जब महाराज की बिदाई का दिन आया तो उनके सत्कार के लिये लोगों ने नगर कीर्तन का प्रबन्ध किया। स्वामी जी के गले में मालायें पहिनाई गईं। वे हाथी पर चढ़ाये गये और वेद भगवान

पालकी में रक्खे गये। जलूस गाजे बाजे के साथ निकाला गया। कुछ कट्टर उपद्रवी लोगों ने विघ्न डालने के लिये गर्दभानन्द की सवारी निकाली। ज्यों ज्यों जलूस आगे बढ़ता जाता था त्यों त्यों दूसरे दल के लोग कोलाहल मचाने, गालियां बकने और कीच फेंकते थे।

रानडे भी साथ में थे। वे चाहते थे कि पुलिस की सहायता से यह उपद्रव शान्त करवा दिया जाय किन्तु स्वामी जी ने ऐसा करने से उन्हें मना कर दिया। वे उलटे उनकी मूर्खता पर हंसते जाते थे। जलूस निश्चित किये हुये स्थान तक पहुँच गया और वहाँ स्वामी जी का एक बार और अच्छी तरह सन्मान किया गया। दो मास पूना में वैदिक धर्म का प्रचार करके स्वामी जी बम्बई चले गये।

पञ्जाब में प्रचार

सम्वत् १९३६ में दिल्ली में गवर्मेण्ट की ओर से एक बड़ा दरबार हुआ। उसमें हर प्रान्त के बड़े बड़े भद्र पुरुष पधारे थे। स्वामी जी कब चूकने वाले थे, वे भी वैदिक धर्म के प्रचार के लिये गये। वहाँ

उनकी मुलाकात बाबू केशवचन्द्रसेन, बाबू नवीन-चन्द्रराय, मुन्शी कन्हैय्यालाल, सर सय्यद अहमद खाँ आदि सज्जनों से हुई।

दिल्ली दरबार से निपट कर अनेक स्थानों में प्रचार करते हुये वे पंजाब के भीतर घुसे। इस प्रान्त में और सब जगहों से स्वामी जी को सफलता अधिक मिली। पंजाब की राजधानी लाहौर में स्वामी जी के व्याख्यानों की धूम मच गई। वहाँ उन्होंने आर्य्य समाज खोला। वहां से वे फिर मुलतान, गुरुदासपुर, रावलपिंडी, झेलम, वजीराबाद और गुजरान गये। जहां जहां वे गये वहां वहां उन्होंने शास्त्रार्थ किये, आर्य्यसमाजें खोलीं और व्याख्यान दिये।

पंजाब से स्वामी जी संयुक्त प्रान्त चले आये और बरेली आदि स्थानों में उन्होंने ईसाइयों से शास्त्रार्थ किया। मेरठ में पंडिता रमाबाई, मेडमब्लेवस्टकी और कर्नल अलकाट की इच्छा थी कि थियासिफल सोसाइटी और आर्य्यसमाज एक कर दिये जायँ किन्तु सिद्धान्त एक न होने से ऐसा न हो सका।

राजस्थान का दौरा

फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् १९३७ को स्वामी दयानन्द भरतपुर गये और अब उन्होंने राजपूताने में वैदिक प्रचार का निश्चय किया। भरतपुर में कई व्याख्यान देकर वे जयपुर गये और वहाँ से अजमेर पधारें। यहाँ उन्होंने व्याख्यानों की धूम मचा दी। यहाँ आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध काम करनेवाले पंडित लेखराम जी उनसे मिले और उनके साथ कुछ समय तक वहाँ रहे। यहां अनेक शास्त्रार्थ हुये और सब में स्वामी दयानन्द की जीत हुई।

कर्तिक सुदी ८ सं० १९३८ को स्वामी जी चित्तौड़ पहुँचे। उन दिनों वहाँ लार्ड रिपन महोदय की सभा होने वाली थी। ठाकुर और जमींदार अच्छी संख्या में उसमें शामिल होने के लिये आये थे। राणा सज्जनसिंह भी अपने दल बादल सहित वहाँ मौजूद थे।

स्वामी जी ने व्याख्यान देना शुरू कर दिया। राजे महाराजे उनके दर्शनों से और उपदेशों से लाभ उठाने लगे। उनकी-कीर्ति महाराज सज्जनसिंह जी के भी पास पहुँची। एक दिन वे सेवा में उपस्थित हुये और महाराज का व्याख्यान सुन-

कर बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने उदयपुर चलने की स्वामी जी से प्रार्थना की। स्वामी जी एक समय वहाँ भी पहुँचे और वैदिक धर्म का प्रचार किया।

उदयपुर में रहकर स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा स्थापित की। इसके सभापति स्वयं महाराज सज्जन सिंह थे। न्याय मूर्ति रानडे आदि बाहर के सज्जन भी इसके सभासद थे। इन्दौर, शाहपुरा आदि रजवाड़ों में प्रचार करते हुये स्वामी जी जोधपुर जाने का विचार करने लगे। चलते समय लोगों ने उन्हें चेतावनी दी थी कि जहां आप जा रहे हैं वहां के लोग कठोर हैं। कहीं ऐसा न हो आपके सत्योपदेश से चिढ़ कर वे आप पर वार करें। स्वामी जी ने उत्तर दिया, "यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियां बना कर जलादें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्य का प्रचार करूंगा।"

जब स्वामी जी जोधपुर पहुँचे तो महाराणा की ओर से उनका अच्छा स्वागत किया गया। उनके दुग्धपान करने के लिये एक गाय आ गई और रावराजा तेजसिंह उनकी देख भाल करने के लिये उनकी सेवा में रक्खे गये। सत्रहवें दिन महाराज

यशवन्त सिंह स्वयं सेवा में पधारे और स्वामी जी के चरणों को स्पर्शकर बड़े सन्मान के साथ उनको नमस्कार किया। उन्होंने एक सौ रुपया और पांच अशर्फियां भेंट में रक्खीं और फर्श पर नीचे बैठ गये। स्वामी जी के बहुत कहने पर भी वे कुर्सी पर नहीं बैठे। राणा ने कहा, "आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं, इसलिये नीचे आसन पर बैठना ही हमारा धर्म है।" किन्तु स्वामी जीने हाथ पकड़ कर उन्हें जबरदस्ती अपने बगल में कुर्सी पर बैठा लिया।

दूसरे दिन से महाराज के विशाल आंगन में ४ से ६ सायंकाल को प्रति दिन व्याख्यान देने की नोटिस स्वामी जी ने दे दी। ठीक समय पर स्वामी जी पहुँच जाते और ६ बजे तक व्याख्यान देते थे। एक दिन उन्होंने मुसलमानी धर्म का खण्डन किया। इस पर एक मुसल्मान युवक स्वामी जी पर बहुत बिगड़ा और उसने कहा, "आप मुंह सम्हाल कर बोलें, हमारे धर्म के बारे में कुछ न कहें।" उस दिन से वह स्वामी जी से बदला लेने को सोचने लगा।

अन्तिम दिन

जोधपुर के राणा महाराज यशवन्त सिंह स्वामी जी के मुरीद हो चुके थे। वे उनके दर्शनों के लिये प्राय: आते थे और स्वामी जी भी उनके राज भवन में निःसंकोच जाते थे। एक दिन स्वामी जी जब जोधपुर महाराज को दर्शन देने गये तो वहाँ उनकी वेश्या "नन्हीं जान" भी आई हुई थी। उसका दरबार में बड़ा मान था। सब उससे दबते थे। महाराज ने उस समय उसे छिपाने की बड़ी कोशिश की किन्तु स्वामी जी की दृष्टि उस पर पड़ ही गई।

स्वामी जी महाराज पर बहुत बिगड़े। उन्होंने कहा, "राजन्। राजा लोग सिंह समझे जाते हैं। वेश्यायें दर दर घूमने वाली कुतियां हैं। सिंह लोग कुतियों का पीछा नहीं करते। इससे मान मर्यादा में बट्टा लगता है। इस लिये इस कर्म को छोड़ना चाहिये।" महाराज यशवन्त सिंह स्वामी जी के उपदेश को सुनकर बड़े लज्जित हुये।

इस उपदेश से नन्हीं जान स्वामी जी पर बहुत बिगड़ी। वह सताई हुई सर्पिणी की तरह बल खाने लगी। उसको पक्का विश्वास हो गया कि

मेरे रंग में भंग करने वाले स्वामी जी ही हैं। वह सब प्रकार से स्वामी जी के प्राणों को लेने के लिये उतारू हो गई। उसके इस काम में वे भी सहायता देने के लिये तैय्यार हो गये थे जो स्वामी जी के सत्य व्याख्यानों से चिढ़े हुये बैठे थे।

कुँआर बदी चतुर्दशी सम्वत १९४० को स्वामी जी ने रसोइये से दूध लेकर पान किया और फिर सो गये। थोड़ी देर बाद उनके पेट में दर्द पैदा हुआ और तीन बार क़य हुई। इसके बाद वे लेट रहे। चित्त की व्याकुलता बढ़ रही थी। वे दूसरे दिन देर से उठे और उठते ही उन्हें फिर क़य हुई, इससे उनको सन्देह हुआ। थोड़ी देर में उन्हें दस्त होने लगा।

चार बजे शाम स्वामी जी की बीमारी का हाल महाराज तक पहुँचा। उन्होंने डाक्टर अलीमर्दान खां को औषधि करने के लिये भेजा और उन्होंने खाने की कुछ औषधि भी दी किन्तु शान्त होने की जगह इस नई औषधि से उनका रोग और भी अधिक बढ़ा। तीस चालीस दस्त हुये और दर्द और भी तेज हुआ।

स्वामी दयानन्द जी सन्यासी थे। वे किसी को हानि नहीं पहुँचाना चाहते थे, जानते हुये भी

उन्होंने किसी से न कहा कि मुझे विष दिया गया है। वास्तव में जगन्नाथ ब्राह्मण स्वामी जी की सेवा में रहता था। वह उनके खान पान का प्रबन्ध करता था। न मालुम किसके बहकाने से, चकमा दिलाने से वह लोभवश इस महापाप के कीचड़ में कूद पड़ा, उसीने स्वामी जी को दूध के साथ विष दिया था। उसने स्वामी जी से अपना अपराध स्वीकार भी कर लिया था उन्होंने उससे इतना ही कहा, "जगन्नाथ, मेरे इस प्रकार मरने से मेरा काम अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि इससे लोकहित की कितनी हानि हुई।" इसके पश्चात् उन्होंने उसे कुछ रुपये दिये और वहां से चले जाने का आदेश किया। इस प्रकार स्वामी जी ने अपने मारने वाले को रुपये भी दिये और उसकी जान भी बचाई।

स्वामी जी की बीमारी का समाचार पत्रों में छपा। सारा आर्य्यसमाज थर्रा उठा। दूर दूर से लोग स्वामी जी को देखने के लिये जोधपुर आने लगे। कुँआर की पूर्णिमा को स्वामी जी डाक्टरों की राय से आबू पर्वत के लिये रवाना हुये और कर्तिक बदी ६ को वे वहाँ पहुँचे। स्वामी जी

को हिचकियां आने लगीं और उनकी अंतड़ियाँ तनने लगीं। अजमेर के डाक्टर लक्ष्मणदास स्वामी जी की औषधि करने लगे। किन्तु स्वामी जी की दशा क्रमशः खराब होती गई। कार्तिक बदी ११ को कुछ भक्त लोग स्वामी जी को अजमेर लाये। बहुत सी अच्छी अच्छी दवायें की गईं किन्तु किसी दवा से कुछ लाभ न हुआ।

कार्तिक कृष्ण १५ को दीपावली के दिन सायं-काल ५॥ बजे स्वामी जी ने पं० गुरुदत्त आदि अपने भक्तों को बुलाया। और उनको अपने चारों ओर खड़े होने का हुक्म दिया। स्वामी जी ने उन्हें ढाढ़स बंधाया और फिर ईश्वर की प्रार्थना करते हुये वे ब्रह्म में लीन हो गये।

स्वामी जी की दिनचर्य्या

स्वामी जी प्रातःकाल ३ बजे उठते और कुल्ला करके थोड़ा सा ठंढा पानी पीते थे। इसके अनन्तर शौच से निवृत्त होकर स्नान करते और फिर योग में लीन हो जाते थे। योग के बाद वे आसन करते थे जिससे उनका व्यायाम होता था।

सूर्य्य निकलने के पहिले वे बाहर साफ हवा में

निकल जाते और चार पांच मील घूमते थे। ८ बजे वे स्थान पर वापस आते थे। थोड़ा सा विश्राम करके वे एक सेर दूध पान करते थे और फिर वे ११ बजे तक लिखने आदि का काम करते थे।

११ बजे एक बार फिर स्नान करके वे भोजन करते थे। वे दो तोले से अधिक घी और छोटे छोटे ८ फुलकों से अधिक अन्न नहीं खाते थे। वे एक एक ग्रास (कौर) को खूब कुचल कुचल कर खाते थे। भोजन करने में उन्हें आध घंटे लगता था। भोजन करते हुये वे समाचार पत्र सुना करते थे।

भोजन करने के अनन्तर वे आध घण्टे तक विश्राम करते और फिर ४ बजे तक लिखने पढ़ने का काम करते थे। ४ से १० बजे रात तक स्वामी जी लोगों से मिलते, व्याख्यान देते या बहस मुबाहसा करते थे। ठीक १० बजे वह सो जाते थे, रात को वे प्राय: उबाला हुआ एक सेर दूध पीते थे।

स्वामी जी ने कौन कौन से काम किये

१. संस्कृत का उद्धार और पुरानी शिक्षा का प्रसार - संस्कृत का पढ़ना और पढ़ाना लोग भूल

रहे थे। वह मुरदा भाषा के नाम से पुकारी जाने लगी थी नव युवकों का अंगरेजी और फारसी में अधिक प्रेम हो रहा था। स्वामी जी ने पुरानी परिपाटी के अनुसार गुरुकुल खुलवाये और उसमें संस्कृत भाषा रक्खवाई। विद्यार्थियों को २० वर्ष तक गुरुकुल में शिक्षा मिलने लगी और वे संस्कृत के विद्वान् होकर निकलने लगे।

(२) ब्रह्मचर्य्य और पूर्ण अवस्था में विवाहः- स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य्य पर अधिक जोर दिया। हिन्दुस्तानियों में आठ आठ और दस दस वर्ष की आयु में विवाह हो रहे थे। बहुत से भलेमानस पांच पांच वर्ष की आयु में भी लड़के लड़की के विवाह कर देते थे, स्वामी जी ने इसके खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने ब्रह्मचर्य्य की महिमा बतलाई और बाल विवाह बन्द कराया। विवाह करने की अवस्था पुरुषों के लिये कम से कम २५ वर्ष ठहराई और स्त्रियों के लिये १६।

(३) ढोंगबाजी और वेदों का प्रचार—नाना प्रकार के झूठे झूठे धर्म ग्रन्थ पढ़कर हिन्दू धर्म के झूठे ढोंग में फंसे थे। वे हज़ारों देवी देवताओं की पूजा करने लग गये थे। कोई भैरव की पूजा करता था, कोई

बरमदेव की पूजा करता था और कोई नाना प्रकार के भूत और चुड़ैलों की पूजा करता था। लोग ऐसे लोगों को हज़ारों और लाखों रुपये दान में देते थे जो रंडीबाजी और नशेबाजी में खर्च करते थे और अनाथ बच्चों को कोई खबर तक नहीं लेता था, मन्दिरों में लाखों बकरे भैंसे धर्म के नाम पर काटे जाते थे। स्वामी जी ने मनुष्यकृत ग्रन्थों का खण्डन करके इन सब कुरीतियों को बन्द कराया और वेदों का प्रचार करके सच्चे हिन्दू धर्म की स्थापना की।

(४) हिन्दू जाति का संगठन (Nationalism)–स्वामी जी के आर्य्य समाजों के खोलने का यही विचार था कि हिन्दू मात्र जात पाँत के बन्धन को तोड़कर एक हिन्दू जाति बने। जातियों से आपस में वैमनस्य अधिक रहता है। ब्राह्मण ब्राह्मण का पक्ष करता है, क्षत्री क्षत्री का पक्ष करता है और वैश्य वैश्य का पक्ष करता है। यह बात स्वामी जी को पसन्द नहीं थी। वे हिन्दुस्तान भर में केवल 'आर्य्य जाति' बनाना चाहते थे।

(५) हिन्दी का उद्धार–स्वामी जी अच्छी तरह जानते थे कि देश के उत्थान के लिये एक भाषा का होना बहुत जरूरी है इसीलिये वह भाषा उन्होंने

हिन्दी को ही बताई थी। यद्यपि उनकी मातृभाषा गुजराती थी तथापि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश और वेदों के भाष्य हिन्दी ही में लिखे हैं। इस समय जो हिन्दी की उन्नति हो रही है उसका अधिक श्रेय स्वामी दयानन्द और उनके आर्य्य समाज को है।

(६) विदेश यात्रा-इस समय तक हमारे नवयुवकों का विद्या और व्यापार के लिये विदेश जाना बिल्कुल रुका हुआ था। जो जाता भी था वह लौटने पर जाति से अलग कर दिया जाता था। उन्होंने शास्त्रों से सिद्ध किया कि भारतवासी पहिले विदेश यात्रा करते थे और बिना रोक टोक के उन्हें अब भी करना चाहिये। सत्यार्थ प्रकाश में वे लिखते हैं, "धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार की जिसको "कन्धार" कहते हैं राजपुत्री से हुआ। माद्रीपाण्डु की स्त्री "ईरान" के राजा की कन्या थी। अर्जुन का विवाह पाताल के जिसको "अमेरिका" कहते हैं राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। यदि आर्य्य देश देशान्तर में न जाते तो ये सब बातें क्योंकरकर सकते थे।...भला जो महाभ्रष्ट...वेश्या आदि के समागम से...धर्म

हीन नहीं होते किन्तु देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं उनकी बुद्धि का क्या कहना है।"

(७) स्त्री जाति का बड़प्पन—स्त्रियों का पढ़ाना हिन्दुस्तान में एक प्रकार से बन्द होगया था और उनको लोग घर की लौंडी समझने लगे थे। 'यत्र नार्य्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का पाठ जहाँ पढ़ाना चाहिये था वहाँ 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' का पाठ पढ़ाया जा रहा था। स्वामी जी ने कन्याओं के लिये गुरुकुल और कन्या पाठशालायें खोलने की आवश्यकता बतलाई। उन्होंने जोर देकर कहा कि जब तक भारतवर्ष की स्त्रियाँ पढ़ी लिखी नहीं होंगी तब तक भारतवर्ष के निवासी सच्चे नागरिक नहीं हो सकते।

(८) विधवा विवाह—विधवाओं की हालत बड़ी शोचनीय हो रही थी। पांच पांच वर्ष की विधवायें देश में मौजूद थीं। हज़ारों विधवाओं को गर्भवती हो जाने के कारण अपने प्राण देने पड़ते थे और हज़ारों विधवायें दूसरी जातियों के लोगों के साथ भाग जाती थीं। स्वामी जी ने देश में विधवाश्रम खोलवाये और भारत संतानों को

बतलाया कि यदि मनुष्य एक से अधिक विवाह कर सकते हैं तो यह अधिकार स्त्रियों को भी क्यों न होना चाहिये।

(९) शुद्धि या अछूतोद्धार—इस समय छुआ छूत का बाज़ार बहुत गरम था। कोई हिन्दू मुसलमान या ईसाई के साथ बैठकर पानी भी पी लेता तो उसे लोग हमेशा के लिये जाति से निकाल देते थे। हिन्दुओं की संख्या इस झूठ ढकोसले से दिन दिन घट रही थी। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म का दर्वाज़ा सब के लिये खोल दिया। उसमें केवल जाति से निकाले हुये हिन्दू ही वापस नहीं लिये जाते थे किन्तु मुसलमान, ईसाई, चमार, भंगी आदि कोई भी मनुष्य शुद्ध करके हिन्दू बाड़े में मिलाया जा सकता था। इस समय देश में जो अछूतोद्धार का प्रश्न छिड़ा हुआ है और जिस कुरीति को मिटाने के लिये महात्मा गान्धी को एक सप्ताह का उपवास करना पड़ा है, वास्तव में उसे पहिले पहिल शुरू करने का श्रेय स्वामी दयानन्द और आर्य्य समाज को है।

(१०) गोरक्षा—ऋषि दयानन्द ने गोरक्षा के बारे में भी विशेष आन्दोलन किया था। उन्होंने धर्म

की दुहाई न देकर इस सवाल को अर्थ की दृष्टि से हल किया था। अपनी पुस्तक गोकरुणानिधि में वे लिखते हैं, "एक गाय न्यून से न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कुछ भी शङ्का नहीं। उस हिसाब से एक मास में सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम छः महीने और दूसरी अधिक से अधिक १८ महीने तक दूध देती है तो दोनों का मध्य भाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते हैं। इस हिसाब से बारह महीनों का दूध निन्नावे मन होता है......गाय न्यून से न्यून ८ और अधिक से अधिक १८ बार ब्याती है, इसका मध्य भाग तेरह बार आया। तो २५७४० मनुष्य एक गाय के जन्म भर के दूध मात्र से एक बार तृप्त हो सकते हैं। इस गाय की एक पीढ़ी में छः बछिया और सात बछड़े हुये, इनमें से एक मर जावे तो भी बारह रहे। उन छः बछियों के दूध मात्र से उक्त प्रकार १५४४४० एक लाख चौवन हज़ार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन हो सकता है।" स्वामी जी ने गवर्नमेंट के अफसरों से भी गोवध बन्द कराने की कई बार प्रार्थना की थी।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला की पुस्तकें

१—सफलता की कुंजी—स्वामी रामतीर्थ के अमेरिका में दिये हुए प्रसिद्ध व्याख्यान का सुन्दर अनुवाद। मूल्य ।)

२—ईश्वरीय बोध—स्वामी विवेकानन्द के गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के उपदेश-रत्नों का संग्रह। मूल्य ।।।)

३—मनुष्य-जीवन की उपयोगिता—तिब्बत में प्राप्त एक बहुत प्राचीन पुस्तक का सरस अनुवाद। इसके एक-एक शब्द उपदेश-प्रद है। मूल्य ।।=)

४—भारत के दशरत्न—भारत के दस महान् पुरुषों का संक्षिप्त परिचय। मूल्य ।-)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—अपने विषय की भारत भर में एक ही पुस्तक है। इसने लाखों युवकों को पतन के गड्ढे से निकालकर उनका उद्धार किया है। मूल्य ।।।)

६—वीर राजपूत—वीर-रस-पूर्ण एक सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यास। तिरंगे चित्र से सुशोभित पुस्तक का मूल्य १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें—स्वास्थ्य सुख-प्रद जीवन बिताने के लिये सुगम उपाय बताने वाली पुस्तक। मूल्य १)

८—महात्मा टालस्टाय की वैज्ञानिक कहानियाँ—मनोरंजक ढंग पर विज्ञान की शिक्षा देने वाली पुस्तक। मू० ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ—भारत के वीरों की साहस और वीरता से भरी हुई फड़कती हुई कहानियों का अनुपम संग्रह। मू० ।।=)

१०—आहुतियाँ—वीरों के बलिदान की अनुपम कहानियाँ जिनके एक-एक शब्द में जादू का सा असर है। मू० ।।।)

११—पढ़ो और हँसो—गुदगुदी पैदा करने वाली सात्विक और सुन्दर पुस्तक। मूल्य ।।)